भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक जीवन दर्शन

शोधार्थी :

ओमप्रकाश (पंजीकरण संख्या 014099229053)

हिन्दी - विभाग (Off -Campus)

शोध निर्देशक :-

डॉ. सुनील कुमार (Asso. Prof.)

राजकीय महाविद्यालय हिसार हरियाणा

द्राविड़ियन विश्वविद्यालय, कूपम आन्ध्र प्रदेश

प्रस्तावना :

समूह में रहना मानव की प्रवृति है । मनुष्य की तुलना अगर अन्य जीवों से करें तो जान पड़ता है कि मनुष्य अकेला नहीं रह सकता परन्तु जीव या जंतु अकेला विचरण कर सकता है । इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुष्य कायर या डरपोक है । इसकी सार्थकता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसका अकेला न चलना उसकी कमजोरी नहीं बल्कि उसकी बुद्धिमता है । सामाजिक होने के कारण अपने समाज का चहुंमुखी विकास करना चाहता है । वह अपनी बुद्धि कौशल से तमाम सुविधाओं का निर्वहन करता हुआ, समाज को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करता है ।

मनुष्य सभी प्राणियों में बुद्धिमान है । हाथी ,शेर आदि जानवर बहुत ही शक्तिशाली होने के बावजूद मनुष्य के सामने सब फीके पड़ जाते हैं । विद्वानों ने मुहावरों के माध्यम से सरल शब्दों में कहा – "अक्ल बड़ी या भैंस"

समाज व जीवन दर्शन के आयाम :

मनुष्य का जीवन दर्शन उच्च कोटि का होना ही चाहिए अन्यथा वह पशु की श्रेणी में माना जाता है । व्यक्ति के विचार ही उसको महान बनाते हैं । सामाजिक व्यक्ति का महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है, आज भी उतना ही है । उस सामाजिक व्यक्ति की बातें कोई भी मना नहीं कर सकता था क्योंकि उसका सामाजिक दर्शन उच्च कोटि का होता था । संस्कृत विद्वान ने सच कहा है- विद्वं च नृपं चैव, नैव तुल्यं कदाचन:। स्वदेशे पूज्यते राजा,विद्वान सर्वत्र पूज्यते।।

विद्वान की हर जगह पूजा होती है । यहाँ वो विद्वान है, जिसका सामाजिक दर्शन समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होता है ।

मिश्र जी के उपन्यासों में समाज की महता के साथ-साथ जीवन दर्शन का अनूठा मेल दिखाया गया है । 'गोबिंद-गाथा' उपन्यास में समाज व दर्शन का अनूठा संबंध मन को प्रफुल्लित करता है –"सपनों का रूप – ग्रहण करना सुखद होता है । आकांक्षाओं की पूर्ति एक अद्भुत आनन्द से अंतर को आह्लादित कर जाती है । लक्ष्य – गंतव्य – को समीप आते देख किस का मन मग्न नहीं होता ? गुरु गोबिंद राय के साथ ऐसा ही हो रहा था । पाटलिपुत्र के दिनों से ही उन्होंने एक सपना संजोया था,एक आकांक्षा पाली थी । सिख-धर्म को पूर्णतया वीर -धर्म में परिवर्तित कर देने की । उन्हें पता था कि गुरु हरगोबिन्द की दृष्टि में भी सिख-शक्ति पर्याप्त नहीं थी । सिख,सैन्य बल की दृष्टि से

अभी बहुत सशक्त नहीं थे । अपने पिता की शहादत के पश्चात् तो उनके अन्दर यह धारण और बद्ध-मूल हो गई थी की मुगलों की दमन -नीति का जवाब एक सुगठित सैन्य शक्ति हो हो सकती थी ।"१

मिश्र जी के उपन्यासों में सामाजिक जीवन दर्शन :

मनुष्य की प्रकृति सदा से ही सीखने की रही है । वह दृश्य को देखकर उसमें निहित तथ्यों को खोजने का प्रयास करता है । उसके सभी पहुलओं पर विस्तार से चर्चा करना, उसके दार्शनिक विचारों को उजागर करता है । मनुष्य किसी विषय में निहित तथ्यों को जान नहीं लेता,तब तक वह अपने मन-मस्तिष्क को आराम से बैठने नहीं देता है ।दार्शनिक हमेशा समाज के जीवंत मूल्यों को अपनी बहस का हिस्सा बनाता है ।

मिश्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक जीवन दर्शन को चित्रित किया है । 'पवनपुत्र' उपन्यास में पम्पा सरोवर के माध्यम से जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है -

"पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा ।

पम्पा नाम सुभग गम्भीरा ।।

संत हृदय जस निर्मल बारी ।

बांके घाट मनोहर चारी ।।

जहं-तहं पियहिं विविध मृग नीरा ।

जनु उदार गृह जाचक भीरा ।।"२

विविध समाजों का चित्रण:

मिश्र जी के उपन्यास 'पवन पुत्र' के अध्याय तीन के कुछ अंश को पढ़नें मात्र से समाज की विविधता का ज्ञान होता है इसमें हनुमान अपनी माता से अपने अध्याय के बारे में प्रश्नोत्तरी में अपनी मूर्खता मान कर विवशता को प्रकट करता है - "माँ मैं मूर्ख ही रह जाऊंगा ! जड़मति ?"३ उपर्युक्त वचन कथन हनुमान जी के है परन्तु "नारायण! नारायण! नारायण !"४ ये शब्द अंजनी माता के मन मस्तिष्क में चंदन की भांति शीतलता प्रदान करने लगा क्योंकि समस्या निदान गुरु भगवान भास्कर की ओर इंगित करता है । 'पुरुषोतम' उपन्यास में अस्ति और प्राप्ति दोनों के मार्मिक चित्रण हृदयविदारक सबके मन में कांटों की भांति लगातार चुभ रहा है । बारह दिनों का अस्ति प्राप्ति के लिए शोक भी नहीं होता अगर भगवान कृष्ण ना होते । नारी का सम्मान उच्च व्यक्तित्व पर आधारित होता हैं । मिश्र जी के उपन्यासों में सामाजिक विविधता में बेटियों को बेटा होने का रूप महाराज उग्रसेन के मुखारबिंद से होता हैं - "जो हो चुका उसे भूल जाना ही श्रेयस्करं है । नियति का विधान मान उसे शिरोधार्य करने में ही बुद्धिमता हैं "५ अन्य उक्ति में " पुत्र शोक से बड़ा इस लोक में कोई शोक नहीं होता , इस तथ्य को तुम नहीं जान सकती ।"६ इस उपन्यास में शोक ग्रस्त अस्ति का आंचल सिर से सरक जाना उस समय की रूढ़िवादी परंपरा के विरोध में था । मिश्र जी की दार्शनिकता बड़ी सहजता से उपन्यास के पात्रों के माध्यम से चित्रित हुई है ।

"मैं भीष्म बोल रहा हूँ " उपन्यास में समाज के विविध दृश्यों से पर्दा उठता है । पांच जन्य नानक शंख की आवाज सुनकर भीष्म अपने किए वचनों का दग्ल भरकर कौरव पक्ष की ओर लड़ना जीवतपर्यन्त रक्षा का भार लिए ,रणभेरी में अपनी हुंकार भरता हैं । यह समाज की विविधता नहीं तो क्या क्योंकि कुछ कार्य मानव को न चाहते हुए करने पड़ते हैं । यह इसी का उदाहरण है । द्रोपदी चीर हरण में सभी सभासद अपने सिर को झुकाए हुए करबद्ध दृश्य को अनवरत देखते रहे ।

वर्तमान परिवेश में छल कपट का बोलबाला है, मनुष्य स्वार्थपूर्ति हेतु इस प्रकार के अनैतिक कार्यों में संलिप्त है । धर्म युद्ध नाम के विपरीत जब अर्जुन पुत्र को सात-सात महारथियों ने घेर लिया तब क्या था , बाल्यकाल में भीम को जहर देना व लाख का महल आदि-आदि । ये सभी घटित विविध घटनाएं भीष्म को ही नहीं ,अन्य को भी झकझोर रही है । मिश्र ने अपने उपन्यासों में अनोखा उदाहरण पेश करते हुए पुत्र ने अपने पिता की शादी हेतु स्वयं को ताउम्र ब्रह्मचारी बना दिया है । राव दूदा ने यवन सेना को जब धूल चटाई उस समय का दृश्य, यवन सेना मुंह लटकाये दबे पांवों से वापिस चली गई ,परन्तु राजपूत वीरों ने दो सौ कुमारियों को अपने घोड़ो पर आसीन करके प्रात: काल सुरक्षित अपने-अपने घरों की ओर विदाई दे दी थी ।

"पीताम्बरा" उपन्यास में मीरा की भक्ति इस प्रकार दिखाई है कि सामान्य जन अपने जीवनचर्या को व्यर्थ मान बैठता है। वह सांसारिक जीवन से मुक्ति चाहने लगता है। समयान्तर में मीराबाई वीणा के तार में अपने सुर में सुर इस प्रकार मिलाती है कि -

"माई म्हाणे सुपणा मा परण्यां दीनानाथ ।
छप्पन कोटां जणा पधारया दुलहो सिरी व्रजनाथ ।

सुपना मां तोरण बन्धारी सुपना मां गह्या हाथ ।

सुपना मां म्हारे परण गया पायां अचल सोहाग ।

मिरां रो गिरधर मिल्यारी ,पूरब जन्म रो भाग ।।"७

मिश्र जी इस उपन्यास में राज घराने में जन्मी बहु-बेटियों के बंधन को मुक्त कर दिया है । जहाँ वीरोक्तियां होनी चाहिए , वहां वीणा के तारों से मन को शान्ति मिल रही है । दूसरी ओर तिलक लगाकर रणभेरी में भेजने वाली रानियों का हृदय पत्थर की भांति कठोर हो गया है । यह विरोधाभास नहीं तो क्या ? मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में सजीव चित्रण किया है । समाज में भक्ति-भावना की अलख जगाने का कार्य जहाँ महापुरुषों (बुद्ध,महाबीर) ने उठाया था अब नारी स्वरूपा मीराबाई भी इनसे कम नहीं आंकी जाती है । मिश्र जी के उन्यासों में समाज की विविधता में भाषा का रूप भी बदला नजर आया है, जो कि 'गोबिंद गाथा' में स्पष्ट रूप से बीबी सुन्दरी के मुख के उच्चरित करवाया है -

"आदि पुरखु कुऊ अलह कहिए ,

संख भई बारी ।

देवल देवतियां करू लागा

ऐसी कीरति चाली ।

कूजा,बांग,निमाज मसल्ला

नील रूप बनवारी ।

घरी - घरी मिआं सभना जिआं

बोली अवर तुमारी ।"८

सूक्ष्मता से ज्ञातव्य है कि समाज में देवी देवताओ ने भी अपना-अपना रूप व वेश-भूषा धारण करके विविधता में सहयोग किया है । नीले वस्त्रधारी कृष्ण, हरित चद्दरधारी अल्लाह,यहाँ तक कि वाणी भी धारण कर ली है ।

जाति प्रथा:

मिश्र जी के उपन्यासों में समाज में व्याप्त बुराई जातिप्रथा का वर्णन किया है । दार्शनिक इसे एक अभिशाप मानते हैं, जो समाज को कई भागों में विभक्त कर रही है ,जो की प्राचीन काल में इसका रूप भयावह था । महाभारत काल में तथा मिश्र के उपन्यास 'मैं भीष्म बोल रहा हूँ' में भी जातिप्रथा को दर्शाया गया है । द्रुपद से परिचय करवाते समय जातिवाद का अनूठा उदाहरण मिलता है -"मेरी यह बात सुनकर द्रुपद ठठाकर हंसा और बोला - 'ब्राह्मण ! तुम विक्षिप्त प्रतीत होते हो । राजा और रंक में कैसी मैत्री ? मैं तो तुम्हें पहचान भी नहीं पा रहा हूँ फिर भी अगर मैंने तुमसे मित्रता की हो तब भी उसका कोई महत्व नहीं । जैसे इस संसार में सब कुछ क्षणस्थायी है उसी तरह मित्रता भी अनंतकाल तक नहीं चलती । यदि यथार्थ सुनना चाहते हो तो सुनो जैसे विद्वान की मुर्ख से ,धनवान की दरिद्र से ,शूरवीर की कायर से ,श्रोत्रिय की अश्रोत्रिय से, रथी की अरथी से मित्रता नहीं हो सकती उसी तरह जो राजा नहीं है उसकी राजा से मित्रता कैसे संभव है ? तुम उस तथाकथित मित्रता को भूल जाओ । मैंने राजभोग में समान अधिकार देने की जो प्रतिज्ञा की थी , वह मुझे स्मरण नहीं है । ब्राह्मण !यदि तुम चाहो तो एक रात के लिए मैं तुम्हारे आतिथ्य का प्रबन्ध कर सकता हूँ । इससे अधिक की आशा नहीं करो ।"९ निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य जब द्रोण को अपना गुरु बनाने के लिए अपनी उपस्थिति दर्ज की ,तब निषाद पुत्र यानि निम्न जाति अर्थात शुद्र जाति में उत्पन्न होने के कारण उसके शिष्यत्व को ठुकरा दिया था ।श्रेष्ठ धनुर्धारी बनने पर छल से अंगूठा गुरु दक्षिणा में लेना यहाँ गुरु द्रोणाचार्य ने प्रथम बार जातिवाद से ग्रसित धनुर्विद्या नहीं सिखायी,परन्तु समय आने पर गुरु दक्षिणा की मांग रखना न्यायसंगत नहीं है ।

'पीताम्बरा' एक ऐतिहासिक ओपन्यासिक कृति में मीराबाई के मुख से जातिप्रथा के खंडहर को नूतन सोपान दिया है -

"अच्छे मीठे चाख-चाख बेर लाई भीलणी ।

ऐसी कहाँ आचारवती ,रूप नहीं एक रति ।

नीचों कुल ओछी जात ,अति ही कुलछणी ।

जूठे फल लीन्हें राम,प्रेम की प्रतीत जाण ।

ऊँच - नीच जाने नहीं ,रस की रसीलड़ी।

ऐसी कहा वेद पढ़ी , छीण में विमान चढ़।

हरि जी जूं बांद्यों हेतु बैकुण्ठ में झुलणी ।

दास मीरा तरे सोई ऐसी प्रीती करे जोई ,

पतित - पावन प्रभु गोकुल अहिरणी ।।"१०

घृणास्पद विचारधारा:

मिश्र जी के उपन्यास 'मैं भीष्म बोल रहा हूँ' में मानव की विचार या उसके दर्शन कई बार इतने गिर जाते है कि वह अपनी मर्यादा भूल जाता है ,चाहे उसके सामने माता तुल्य हो । मिश्र जी ने घृणास्पद विचारधारा को सामाजिक जीवन दर्शन में इस प्रकार प्रदर्शित किया है – "शकुनि कब चुकाने वाला था उसने कहा, "भांजे ! अभी तो आर्यावर्त की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी पांचाली आपके तूणीर के अंतिम तीर के रूप में बची है । हो सकता है इस शुभलक्षणा के दाव पर लगाने से तुम्हारी रूठी हुई राजलक्ष्मी मान जाए और तुम जो कुछ खो चुके हो उसे पुन: प्राप्त करने में सफल हो जाओ ।"११

एक अन्यत्र कथन में दुर्योधन ने कहा जो उसकी घृणास्पद विचारधारा की ओर संकेत करता है –"वह अंतपुर से खींचकर द्रोपदी को राजसभा में लाये ।"१२

मिश्र जी ने दु:शासन की नारी के प्रति दार्शनिक विचारधारा को समाज के सामने लाकर खड़ा किया है –"मेरे पास अधिक समय नहीं है । तुम तत्काल राज–सभा के लिए प्रस्थान करो, अन्यथा मुझे बलपूर्वक तुम्हें वहाँ ले जाना पड़ेगा ।"१३

सकारात्मक सोच :

मिश्र जी अपने उपन्यास 'का के लागूं पांव' में सिख धर्म में जन्में महापुरुषों के सकारात्मक दृष्टिकोण से आज हम गौरवान्वित होते हैं। गुरु नानक देव ने सिख धर्म की नींव रखी, वो आज भी अपने हौसलों की उड़ान भर रहा है ।ऐसा तभी संभव हो पाता है, जब आपकी सोच सर्वसमाज के लिए हो ,आपके दिलोदिमाग में त्याग,बलिदान की भावना भरी हो । किसी भी सामाजिक परिस्थितियों में आप टस से मस नहीं होते, चाहे आपको गुरु की भांति अपने पुत्रों का बलिदान क्यों न देना पड़े । मिश्र जी ने आलोच्य उपन्यास में 'वसुधैव कुटुम्बकम्" के नारे से व्यक्ति –व्यक्ति में भेद नहीं माना है –"खैर ,इस बात को छोड़ो" किरपाल ने हथियार डालते हुए कहा, "यह तो मानकर चलोगे कि आदिगुरू नानकदेव से लेकर नवम् गुरु तुम्हारे पिता तक ने व्यक्ति – व्यक्ति के मध्य भेद नहीं माना ? उन्होंने विशेषकर हिन्दू – मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखा यह बात पृथक है कि अत्याचारियों के विरुद्ध उन्होंने सदा आवाज उठाई ।अत्याचारी,आततायी कोई भी हो सकता है –हिन्दू भी ,मुसलमान – मुग़ल–भी ।किन्तु चूँकि मुगलों का शासन है ,प्रभुत्व है ,अत: उनमें अत्याचार की प्रवृति अधिक है ।प्रभुत्व किसे पागल नहीं बना देता ?पर चंद लोगों के अत्याचार –अनाचार के लिए उस पूरे समुदाय – सम्प्रदाय को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता ।"१४

निष्कर्ष :

मिश्र जी के उपन्यासों में सामाजिक जीवन दर्शन पर प्रत्येक दृष्टिकोण से आंकलन करें तो यह मालूम होता है कि पात्रों के माध्यम से हर विषय को स्पर्श किया गया है । उपन्यासकार हमेशा अपनी दार्शनिक विचारधारा को पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों का खंडन करता है तथा समाज को आदर्शवादिता की ओर लेकर जाता है । 'गोबिंद गाथा, उपन्यास में गुरु की महता, गुरु के सार्थक जीवन – चरित्र का वर्णन किया । 'का के लागूं पांव' में गुरु गोबिंद सिंह के साहस और वीरता को सामाजिक जीवन दर्शन का हिस्सा बनाया है । मीराबाई के दर्शन मूल्यों को अपना कर भौतिकता के इस भयावह युग में इस भवसागर से अपनी नैया को पार लगाया जा सकता है । 'पीताम्बरा' उपन्यास में मीराबाई का जीवनवृत का वर्णन है, जो कि सामाजिक जीवन दर्शन पर आधारित है । "पवनपुत्र' उपन्यास में मिश्र ने लालायित राक्षस संस्कृति का विनाश करके समाज में आदर्श और मानवता की नींव रखी है ।

संदर्भ सूची :

१. गोबिन्द गाथा पृष्ठ १६

२. पवनपुत्र पृष्ठ ४६

३. वही पृष्ठ २१

४. वही पृष्ठ २२

५. पुरुषोतम पृष्ठ १५

६. पुरुषोतम पृष्ठ १५

७. पीताम्बरा पृष्ठ २६८

८. गोबिन्द गाथा पृष्ठ ४९

९. मैं भीष्म बोल रहा हूँ पृष्ठ ०९

१०. पीताम्बरा पृष्ठ १८५

११. मैं भीष्म बोल रहा हूँ पृष्ठ १५५

१२. वही पृष्ठ १५५

१३. वही पृष्ठ १५५

१४. का के लागूं पांव पृष्ठ २५३